RESEARCH HUB – International Multidisciplinary Research Journal (RHIMRJ)
Research Paper

आलोचना साहित्य में शिवप्रसाद सिंह का योगदान

कमलेश चौधरी

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)

शोध सारांश– *आलोचना के कार्य पूर्व निश्चित सिद्धान्तों को आलोच्य पर आरोपित करना नहीं है। न आलोच्य के भीतर से उन्हें मनमाने ढंग से निकाल लेने का नाम ही आलोचना है। समर्थ आलोचक आलोच्य की विवेचना में अपनी परम्परा को नया संदर्भ देता है, उसे नवीन जीवन चेतना से संपृक्त करके प्राणवान बनाता है। पर ऐसा वहीं कर सकता है जो अपनी साहित्यिक सांस्कृतिक विरासत से पूर्णतः अभिज्ञ होने के साथ–साथ आधुनिक जीवन चेतना के प्रति सम्यक संवेदनशील हो। एक–एक गाँठ हल्दी के पूँजी बल से महाजन मुद्रा में इतराने वाले अन्यथा ख्यात लोगों की तरह शिवप्रसाद सिंह ने शगूफे के बल पर साहित्य की दुनिया में मुखियागीरी करने का कभी सपना नहीं पाला। उनकी युवा मेधा और श्रमनिष्ठा से प्रेरित होकर 'कीर्तिलता और अवहट्ट भाषा' शीर्षक आरम्भिक अनुशीलन कार्य को देखकर बीहड़ पथ के मनीषी यात्री राहुल सांकृत्यायन ने शुभाशंसा प्रकट की थी, 'बीहड़ पथ को एक सबल पैर' मिला और विस्मित मुद्रा में भाषा शास्त्री डॉ. उदय नारायण तिवारी ने अपने मित्र पं. वाचस्पति पाठक से पूछा था, 'कीर्तिलता और अवहट्ट भाषा' तथा 'सूर पूर्व ब्रजभाषा और साहित्य' के अध्येता और कहानीकार शिवप्रसाद सिंह एक ही व्यक्ति है, 'उत्तरयोगी' नामक महत्वपूर्ण ग्रन्थ देखकर भी कुछ लोगों ने विस्मय विद्रूप किया था और अपनी सिद्ध कूट बुद्धि से कथा शिल्पी शिवप्रसाद सिंह की छवि पर कटाक्ष किया था, मगर उनकी छवि प्रतिकूल परिस्थितियों में भी धूमिल नहीं हुई।*

संकेताक्षर– *आलोचना, कीर्तिलता, विधापति, अस्तित्ववाद।*

शोध विस्तार– नये साहित्य के सृजन ने आलोचना के सामने नई समस्याएँ भी खड़ी की। उसके मूल्यांकन और कलात्मक विवेचन पुराने मानों के आधार पर संभव नहीं थे। इसलिए अपनी परम्परा को युगीन संदर्भों में देखना जरूरी हो गया। बहुत सी पुरानी मर्यादाएँ टूट गई, कुछ झूठी पड़ गई। फिर भी अपनी अतिशय समृद्ध परम्परा में बहुत कुछ ऐसा है जो नवनिर्माण में सहायक हो सकता है और हो भी रहा है, पर यह कार्य काफी जटिल और पेचीदा है।[1]

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने आलोचना साहित्यकार के रूप में विभिन्न ग्रन्थ लिखे है जिसमें सर्वप्रथम कीर्तिलता भारतीय ऐतिहासिक काव्यों की मणिमाला का सुमेरू है। मध्यकालीन भारतीय साहित्य में ऐतिहासिक काव्यों का उदय एक अकस्मात घटना है। अपने छोटे से विकासकाल में इस जाति के साहित्य ने भारतीय वातावरण के भीतर एक ऐसी शैली का निर्माण किया जो अपनी अनेक कथानक रूढ़ियों, यथार्थ और कल्पनाजन्य घटनाओं के विभिन्न मणिकाँचन संयोग तथा नाना लेकचित्तोद्भूत छन्दों की झंकार से पूरे वाड्मय में अपने तरह की अकेली है। कीर्तिलता इस शैली की चरम परिणति है, इसमें कथानक रूढ़ियों और कल्पना के रंगी चित्रों की कमी नहीं पर इनके भीतर यथार्थ इतने प्रौढ़ रूप से अनुस्यूत है कि इतिहास की तथ्यात्मक घटनाओं के उतार–चढ़ाव में भी कोई फर्क नहीं पड़ता।

यह तो साहित्यिक महत्व की बात है। कीर्तिलता की भाषा इससे कम महत्वपूर्ण नहीं। परवर्ती अपभ्रंश स्वयं ही एक महत्वपूर्ण कड़ी है, जो मध्यकालीन और आधुनिक आर्य भाषाओं को विकासक्रम से सम्बद्ध करती है। कीर्तिलता परवर्ती अपभ्रंश के स्वरूप को स्पष्ट करने का सर्वोत्तम आधार है।[2]

हम अवहट्ट भाषा के अन्तर्गत इस स्थान पर यह दिखाना चाहते है कि परवर्ती अपभ्रंश किन बातों में पूर्ववर्ती से भिन्न था। वे कौनसी मुख्य विशेषताएँ है जो अवहट्ट में तो दिखाई पड़ती हैं, किन्तु जिनका परिनिष्ठित अपभ्रंश में अभाव है या वे अविकसित अवस्था में दिखाई पड़ती है। इसी के साथ–साथ प्रसंगानुसार हम यह भी स्पष्ट करना चाहते है कि ये प्रवृत्तियाँ बाद में हिन्दी के विकास में कैसे सहायक हुई। हिन्दी अवहट्ट से विकसित नहीं हुई, हिन्दी के विकास में इस अवहट्ट का प्रभाव अवश्य माना जा सकता है। वैसे हिन्दी शब्द भी भाषा शास्त्रीय दृष्टि से उलझा हुआ है। स्पष्टीकरण के लिए इतना और निवेदन कर दूँ कि हिन्दी से मेरा मतलब पूर्वी और पश्चिमी हिन्दी है, विशेषतः अवधी, ब्रज और खड़ी बोली।

विद्यापति के उन पाठकों के लिए है जो चौदहवीं शताब्दी के संघषपूर्ण वातावरण में उत्पन्न एक महान कवि के गत्वर व्यक्तित्व को देखना चाहते है, उसके व्यक्तित्व का विश्लेषण करके उन सांस्कृतिक मूल्यों का आकलन करना चाहते है जो ऐसे व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक होते है। ऐसे प्रबुद्ध पाठकों के मन में श्री श्रृंगार और भक्ति के बारे में किंचित दुविधा का भाव हो सकता है, इसे दृष्टि में रखकर भक्ति काव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की पुनः परीक्षा की गई है और परिपार्श्व में भक्ति और श्रृंगार के संबंधों का विश्लेषण किया गया है।

विद्यापति सौंदर्य और प्रेम के कवि थे। सौंदर्य के बारे में उनकी क्या धारणा थी, अथवा उनके सौंदर्यबोध का क्या स्तर था आदि प्रश्नों पर काफी विस्तार से विचार किया गया है। मानव और प्रकृति दोनों ही ने सौन्दर्य चित्रण में कवि की रूचि, शैली, मौलिकता और परम्परा धर्मिता यानी पुरानी परिपाटी की स्वीकृति की व्याख्या की है। प्रेम के विषय में कवि के विश्वास और

2016, RHIMRJ, All Rights Reserved ISSN: 2349-7637 (Online)

उनकी धारणाओं का स्पष्टीकरण करते हुए राधा और कृष्ण के प्रेम की विभिन्न आवश्यकताओं का आकलन 'विद्यापति' शीर्षक निबन्ध में किया है।

अंत में विद्यापति के हवहड्ड काव्य का भी संक्षिप्त मूल्यांकन दे दिया गया है, क्योंकि यह उनके कृतित्व का एक बहुत महत्वपूर्ण भाग है और इसका अध्ययन अनिवार्यतः इनके साहित्य के कई प्रश्नों को सम्भाषित करने में उपयोगी सिद्ध होगा।[3]

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने अस्तित्ववाद और आधुनिक परिवेश पर बहुत लिखा है। उनकी पुस्तक आधुनिक परिवेश और नवलेखन के कुछ अंश इस प्रकार है, ''निःसंदेह हमारे कथा साहित्य पर अस्तित्ववाद का प्रभाव पड़ा है। इस प्रभाव ग्रहण का बहुत दुरूपयोग भी हुआ। इसका मूल कारण यह कि इस प्रभाव को भारतीय परिवेश में कम से कम ग्रहण किया गया। वैसे पाश्चात्य साहित्य में से कुछ ग्रहण करना गलत काम नहीं है। जब संस्कृतियाँ इतने निकट आती हैं तो यह आदान–प्रदान एक सहज स्थिति बन जाती है। हाँ, अंधानुकरण करना घातक होता है और यह अंधानुकरण अधकचरे लेखकों में ही होता है।[4]

अस्तित्ववादी दर्शन के अनुसार मानव जीवन में व्यथा, वेदना, पीड़ा, निराशा, शून्यता, एकाकीपन का महत्वपूर्ण स्थान है। इसलिए अस्तित्ववादी चिंतन आधुनिक जीवन के संकटबोध से उत्पन्न जीवन दृष्टि है। कितना अजीब अकेलापन है, राह है, कदम है, घर है, लेकिन कुछ भी नहीं एक विराट अनस्तित्व। अँधेरा अनिश्चय, विराट, अथाह और उसके समक्ष में निहत्था अपने अतीत और भविष्य से भी वंचित। जहाँ पहुंचा था वह डूब चुका है और जहां जाना है वह पता नहीं अँधेरे के पार है भी या नहीं। एकविराट अस्तित्व शून्य, अंधकार शायद हम यह यात्रा जीवन भर करते रहते है और कितनी बार यह अस्तित्व यह शून्य हमको जीने लगता है और हम पाते हैं कि हमारा समस्त 'आस–पास', उजाला, भीड़–भाड़, विज्ञान, दर्शन अकस्मात अस्तित्व में लीन हो गया है।

अस्तित्ववादी चिन्तनों और लेखकों ने 'एकाकीपन, अजनबीयत, असंगति, त्रास, पदार्थीकरण, वेदना, निरर्थकता आदि शब्दों के द्वारा आज की जिन्दगी को एक नये दृष्टिकोण से देखने का प्रयत्न किया। उन्होंने मनुष्य की अब तक की गयी घटाटोप परिभाषा को एक ओर रखकर जिंदगी को बेलौस और बेबाक ढंग से अपनी भोगी हुई अनुभूतियों के बल पर समझने और समझाने का प्रयत्न किया।

अस्तित्ववाद की सबसे बड़ी देन यह है क उसने आज के वातावरण में मनुष्य के अपने और समाज से हुए अलगाव को रेखांकित किया। इस चिंतनधारा उद्देश्य समस्याओं का कोई पिटा–पिटाया समाधान प्रस्तुत करना ही था, बल्कि प्रश्नों को इस तरह उठाना था कि मानव मन में अपनी उग्रता का रूप ग्रहण करें, उसे पूर्णतः समेट ले और इनसे टकराने की अपनी नियति के प्रति आदमी ज्यादा संवेदानात्मक ढंग से जागरूक हो सके। अस्तित्ववाद इसी कारण प्रत्येक दर्शन का प्रस्थान बिन्दु बन जाता है, क्योंकि वह अस्तित्व से संबंधित प्रश्नों को इस ढंग से सामने रखता है कि पहले के समाधान रद्दी और व्यर्थ लगने लगते है। शिवप्रसाद सिंह के आलोचना साहित्य को हम दो भागों में विभक्त कर सकते है–

(अ) व्यावहारिक आलोचना–

व्यावहारिक आलोचना के अन्तर्गत वह गद्य साहित्य आता है, जिसमें लेखक अपनी प्रवृति का दर्शन करता हो। इसमें भावों का संबंध मनुष्य के व्यावहारिक जीवन के साथ बड़ी सूक्ष्मता तथा मार्मिकता के साथ जोडा गया है। इस आलोचनात्मक शैली में भाव प्रेषणीयता का गुण सर्वत्र विद्यमान रहता है। इस दृष्टि से शिवप्रसाद सिंह ने आलोचना साहित्य में 'आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद' और 'आधुनिक परिवेश और नवलेखन' आदि धारावाहिक निबन्ध आते है। इसके संबंध में शिवप्रसाद सिंह ने 'आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद' के शुरू में 'पुरोवाक' (भूमिका) में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है।[5]

''पिछले विश्व युद्ध के बाद बौद्धिक जगत् को शायद ही किसी विचारधारा ने इतना प्रभावित किया हो, जितना कि अस्तित्ववाद ने। यद्यपि इस विचारधारा को जन्म देने का श्रेय कीर्केगार्द को है, किन्तु इसे अखिल वैश्विक मान्यता का आधार तो सार्त्र, कामू और काफ्का जैसे लेखकों ने बनाया। इनमें भी सबसे महत्वपूर्ण व्यक्तित्व सार्त्र का है, जिसने जर्मन जेल से छूटते ही अपने देश की मुक्तिकामना से प्रतिरोध आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। सार्त्र की अपनी अनुभूतियों, कड़वी, तल्ख और जोखम भरी अनुभूतियों के भीतर से कीर्केगार्द के विचार सूत्र और धारणाएँ तथा नीत्शे से लेकर हेडगर तक की दार्शनिक उत्पत्तियाँ एक नयी आभा और चमकदार तेवर लेकर उपस्थित हुई। सार्त्र के एक–एक वाक्य जैसे सम्पूर्ण प्राचीन ज्ञान भण्डार के मलवे पर आबदार मोती की तरह बिखरते चले गये।

यह सारा भाव लोक आधुनिक जिंदगी से इस तरह संसक्त और संपृक्त था कि इसने बरबस मेरा ध्यान आकृष्ट किया। विषयानुकूल भाषा की विशुद्धता, गाम्भीर्य तथा स्वाभाविकता शिवप्रसाद सिंह जी के आलोचना साहित्य में उल्लेखनीय है।

(ब) सैद्धान्तिक आलोचना–

इसके अन्तर्गत शिवप्रसाद सिंह के साहित्य तथा काव्य सिद्धान्त संबंधी आलोचना आती है। हिन्दी को सैद्धान्तिक आलोचना की विरासत दीर्घकाल से प्राप्त थी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के पाश्चात्य काव्य शास्त्र, मनोविज्ञान तथा समाज शास्त्र के

आलोक में भारतीय काव्य शास्त्र का पुनराख्यान करते हुए हिन्दी आलोचना को पृष्टभूमि पर प्रतिष्ठित किया। शुक्ल जी ने स्वयं पाश्चात्य काव्य सिद्धान्त और भारतीय काव्य शास्त्र की अच्छी तरह आत्मसात् करने की चेष्टा की।

शिवालिक यह रचना कृति शिवप्रसाद जी ने अपने गुरू आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के व्यक्तित्व और सृजन की परिचय प्ररीक्षणात्मक सामग्री के रूप में तैयार की है। स्वयं लेखक के शब्दों में, ''समय कम था। अभिनन्दन ग्रन्थ नामक कोई वस्तु तैयार करने का संकल्प था, क्योंकि मैं जानता था कि वह मेरी क्षमता के बाहर की बात है, ऐसी पुस्तक प्रकाशित करने की योजना जरूर थी जो पंडित जी के व्यक्तित्व और उनके साहित्य को सही परिप्रेक्ष्य में देखने में सहायक बन सके। आचार्य द्विवेदी अपनी कतिपय प्राचीन धारणाओं के बावजूद हिन्दी के विरल व्यक्ति है जिनके साहित्य में आस्था का एक ऐसा लचीला और नव्य रूप मिलता है, जिसे आज की हमारी पीढ़ी के साहित्यकार भी समझना पसंद करेंगे बशर्त कि वे आस्था की तमाम संभावनाओं को परखे बिना ही आस्थाहीन होने का संकल्प न ले चुके हो।''

विद्यापति रचना शिवप्रसाद सिंह के शब्दों में, ''इस पुस्तक की समीक्षा प्रक्रिया जाने अनजाने कुछ इस तरह की रचनात्मक और सहमुक्तिपरक हो गई कि पाठकों के सामने विद्यापति का काव्य एक जीवन व्यक्तित्व की भोगी हुई अनुभूतियों का साक्ष्य बनकर उपस्थित हो सका है।''[6]

हम मानते है कि शैव कवि यदि प्रेमगीत लिखता है तो वह अवश्य श्रृंगारिक होगा, क्योंकि भक्तिपरक प्रेमगीत तो केवल वैश्णव कवि ही लिखता है। इसलिए समलोचना के तीसरे दौर में विद्यापति के आलोचक के सामने सबसे बड़ा प्रश्न यही था कि विद्यापति भक्त थे या श्रृंगारिक।

समालोचना के चौथे दौर में यह पुस्तक आवश्यक थी। तीन दौर की भयंकर समीक्षाओं के बाद विद्यापति सामान्य विद्यार्थी के लिए वर्ज्य हो चुके थे और साहित्य की उच्चतम कक्षाओं में भी उनके स्तुति पद और प्रकृति संबंधी गीत आदि ही पढ़ाये जाते है। यह पुस्तक उन विद्यार्थियों अथवा पाठकों के लिए है जो चौदहवीं शताब्दी के संघषपूर्ण वातावरण में उत्पन्न एक महान् कवि के गत्वर व्यक्तित्व को देखना चाहते है, उसके व्यक्तित्व का विश्लेषण करना चाहते है।

कीर्तिलता और अवहट्ट भाषा इस संबंध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के विचार निम्न प्रकार से है– ''लेखक ने भाषा संबंधी विवेचना के साथ पाठ शोध का जो महत्वपूर्ण कार्य किया है, वह भाषा और साहित्य की कई उलझी हुई गुत्थियों को सुलझाने में सहायक होगा, ऐसा विश्वास है। शब्दार्थ और विस्तृत शब्द सूची देकर सम्पादक ने पुस्तक का महत्व बढ़ा दिया है। इन बातों से पुस्तक साहित्य और भाषा के शिक्षार्थियों के लिए अधिक उपयोगी हो गयी है।''[7]

इस प्रकार शिवप्रसाद सिंह ने सैद्धान्तिक आलोचना क विवेचन के सिलसिले में उन्हीं पक्षों को उठाया है, जिनसे आधुनिक आलोचना का सीधा संबंध है। शिवप्रसाद सिंह की हिन्दी आलोचना दृष्टि अधिक दायित्वपूर्ण और जागरूक है, अपनी समृद्ध विरासत की पहचान कराती है।

इस प्रकार आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद पर लेखक ने इस सभी बातों को ध्यान में रखकर लिखना आवश्यक समझा। इसके कई निबन्ध धर्मयुग में छपे हैं तथा यह आधुनिक जिंदगी से संसक्त भाव लोक लेखक को लगा। इस प्रकार लेखक ने स्वयं इस संबंध में लिखा है, ''यह सारा भाव लोक आधुनिक जिंदगी से इस तरह ससक्त और सम्पृक्त था कि इसने बरबस मेरा ध्यान आकृष्ट किया। मार्च 1964 में मैने कीर्केगार्द की डायरी पढ़ी और उसके व्यक्तित्व को बहुत नजदीक से देख सका। उसी वक्त मैने 'टूटे रथचक्रों का सारथी कीर्केगार्द' शीर्षक निबन्ध लिखा और उसे धर्मयुग में भेज दिया। वह निबन्ध 21 जून, 1964 के अंक में प्रकाशित हुआ। 'धर्मयुग' ने कीर्केगार्द का पूर्ण पृष्ठीय रंगीन चित्र भी छापा। उस वक्त बन्धुवर डॉ0 धर्मवीर भारती के स्नेहपूर्ण आग्रह से मैने सभी प्रमुख अस्तित्ववादी चिंतकों पर लेख लिखना शुरू किया जो 16 मई 1965 तक यथावसर छपते रहे। भारती जी ने कई निबन्धों की शीर्ष टिप्पणियाँ भी खुद लिखी। लेखक उनके प्रति कृतज्ञ है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि ये धारावाहिक निबन्ध हिन्दी में अस्तित्ववाद की चिंतनधारा को स्पष्ट करने के प्रथम प्रयत्न थे।''[8]

निष्कर्ष– निष्कर्ष रूप में डॉ0 शिवप्रसाद सिंह का आलोचना साहित्य का हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान है। शिवप्रसाद सिंह को पढ़ने के बाद लगा किया कि उन्होंने किसी 'वाद' या 'दर्शन' को अपने साहित्य का आवरण नहीं बनाया। वे ऊपर से लादी गयी आस्था के उतने ही विरोधी है, जितना आत्मघाती दिशाहीन आस्था के। वे मानते हैं कि परम्परा को जानकर उसके अवांछित तत्वों को अस्वीकार करना आस्था है और परम्परा को बिना जाने उसे अस्वीकार करने का प्रयत्न खोललेपन का द्योतक है। वे साहित्य को आत्म अन्वेषण की प्रक्रिया मानते है और उनका विश्वास है कि मनुष्य मात्र स्वभावतः चरम अनास्था का विरोधी है।

संदर्भ सूची–

1. समसामयिक हिन्दी साहित्य–सं.हरिवंशराय बच्चन, नगेन्द्र, भारत भूषण अग्रवाल, पृ.257
2. कीर्तिलता और अवहट्ट भाषा–शिवप्रसाद सिंह
3. विद्यापति–शिवप्रसाद सिंह (निवेदन)

4. आधुनिक परिवेश और नवलेखन–शिवप्रसाद सिंह
5. शान्ति निकेतन से शिवालिक–सं. शिवप्रसाद सिंह, आभार (भूमिका)
6. विद्यापति– शिवप्रसाद सिंह, नवीन संस्करण (भूमिका)
7. शिवप्रसाद सिंह : कीर्तिलता और अवहट्ठ भाषा (भूमिका), आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी।
8. शिवप्रसाद सिंह : आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद (पुरोवाक्)।

2016, RHIMRJ, All Rights Reserved *ISSN:* 2349-7637 (Online)